की उत्पत्ति और उसका प्रारम्भिक इतिहास

लालमणि जोशी

(परिसंवाद–१ प्रतिमुद्रणम्)

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः

वाराणसी–२२१००२ (उ० प्र०)

योग की उत्पत्ति और उसका प्रारम्भिक इतिहास

लालमणि जोशी

[१]

'योग' क्या है ? भारतीय धार्मिकता के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण से इस प्रश्न का एक उत्तर नहीं हो सकता। 'योग' शब्द के अनेक अर्थ हैं। इसका सामान्य अर्थ जोड़ने, युक्त करने, एक साथ होने से है। रथ के साथ बाँधे जाने वाले पशुओं के बन्ध को 'योग' कहा गया है। ऋग्वेद (१-२४-९) में 'योग' शब्द का प्राचीनतम यही अर्थ है। यद्यपि ऋक् संहिता में अन्यत्र 'योग' एवं 'योगक्षेम' शब्द आये हैं, परन्तु उनका अर्थ योगसूत्र अथवा उपनिषदों अथवा महाभारत में उपलब्ध 'योग' के अर्थ से अति दूर है। दूसरे शब्दों में 'योग' शब्द प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में सुविदित है, परन्तु वह ध्यानपथ अथवा योगमार्ग का पारिभाषिक शब्द नहीं है। हमारा विश्वास है कि 'निर्वाण' अथवा 'मोक्ष' की निष्णात कल्पना और 'योग' द्वारा उसकी प्राप्ति की खोज ऋग्वैदिक आर्यों की संस्कृति की परिधि के बाहर आर्येतर एवं अवैदिक विचारधारा का परिणाम थी।

'योग' का सम्बन्ध 'तप' के साथ रहा है। प्राचीन वैदिक ग्रन्थ 'तप' का और उसके परिणामों का बहुल उल्लेख करते हैं। 'तप' का यज्ञ के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल का 'तप' यज्ञ का ही एक स्वरूप अथवा पहलू था। चूँकि 'मोक्ष' का आदर्श संहिताओं, ब्राह्मणों एवं आरण्यकों में अज्ञात है, अतएव वैदिक 'तप' को उसी प्रकार मुक्ति का मार्ग नहीं माना जा सकता है, जिस प्रकार वैदिक यज्ञ को निर्वाण का साधन नहीं माना जा सकता। 'योग' का 'तप' व यज्ञ के अतिरिक्त जादू (वैदिक 'यातु') चमत्कार, तन्त्र, मन्त्र, चिकित्सा एवं सिद्धियों से भी प्राचीन समय से सम्बन्ध रहा है। ऐतिहासिक युग में 'तप' और उससे प्राप्त होने वाली शक्तियों का ध्यान से उत्पन्न सिद्धियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध समझा जाता था। तपस्या के विचारादर्शों ने प्राचीन भारतीय धार्मिक पुराकथाओं, उपदेशपरक आख्यानों एवं लोकमानस को अत्यधिक प्रभावित किया था। महाभारत (उद्योगपर्व, अध्याय ४३, श्लोक १३) में **'तपोमूलमिदं सर्वम्'** कहा गया है। इस धारणा में महाभारत के पूर्व वैदिक युग में और उसके पश्चात्

के समय में आज तक जनसाधारण की आस्था रही है। 'योग' की भाँति 'तप' का भी विस्तृत ऐतिहासिक अध्ययन करना आवश्यक है।

'योग' का सम्बन्ध 'संन्यासाश्रम' से भी है, परन्तु 'योग' की उत्पत्ति चतुर्थाश्रम की उत्पत्ति से और योगाभ्यास को संन्यासाश्रम तक ही सीमित समझना त्रुटिपूर्ण है। आश्रमव्यवस्था शाक्यमुनि बुद्ध के पश्चात्काल की उपज है और चतुर्थ अथवा संन्यास-आश्रम का ब्राह्मणपरम्परा में प्रवेश जैन एवं बौद्ध श्रमणों के संगठित संघों की व्यापकता का परिणाम माना गया है।[१] प्राचीन वैदिक ब्राह्मण परम्परा संन्यासाश्रम अथवा श्रामण्य के पक्ष में नहीं थी। कालान्तर में 'योग' की भाँति संन्यासाश्रम अथवा भिक्षु-जीवन भी प्रगतिशील वैदिक परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण संस्था माना गया।

'योग' की उत्पत्ति अनेक पश्चिमी विद्वानों ने 'जादू' से सम्बन्धित काय-वाक्-चित्त की उन प्रक्रियाओं से हुई मानी है, जो विश्व भर में व्यापकरूप से आदिकाल से प्रचलित रही हैं। 'योग' के लौकिक एवं अर्द्ध लौकिक स्वरूप की अवहेलना नहीं की जा सकती है। 'योग' का तप, मन्त्रविद्या, गुह्यसाधना, सिद्धि, शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक चमत्कार, परकायप्रवेश, परचित्तज्ञान, अभिचार, वशीकरण, भूत-प्रेत पर विजय, रोग व विष से मुक्ति आदि नाना मानवीय व्यापारों से जो लोकप्रिय सम्बन्ध रहा है, वह इतिहास में सुविदित है।[२] 'योग' विषयक नाना भ्रान्तियों का सम्बन्ध 'योग' के लौकिक एवं अर्द्धलौकिक स्वरूप से है। इससे यह भी संकेतित है कि 'योग' का पारलौकिक एवं पारमार्थिक स्वरूप भी है। वस्तुतः यही स्वरूप हमारे वर्तमान अध्ययन का विषय है। हमारा मत यह है कि 'योग' एक पद्धति है, शरीर एवं मन को व्यवस्थित करने की एक विद्या अथवा शास्त्र है। मार्ग, यान, विधि इसके पर्यायवाची हैं। 'योग' इस पद्धति अथवा पथ को भी कहते हैं और इस पद्धति अथवा पथ पर उद्योग एवं प्रयत्न अथवा प्रध्यान (पालि=पधान) को भी कहते हैं। इस पद्धति का उपयोग आरोग्य-प्राप्ति, सुख-प्राप्ति, सिद्धियों की प्राप्ति अथवा मुक्ति की प्राप्ति के लिये किया जा सकता है और कदाचित् किया जाता रहा है। यही कारण है कि 'योग' का सम्बन्ध बोधिचर्या अथवा ब्रह्मविद्या के साथ ही नहीं, अपितु

---

१. द्रष्टव्य—गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, 'स्टडीज इन दि ओरिजिन्स आफ बुद्धिज्म' १९५८ (इलाहाबाद), पृ० ३२२–२६; लालमणि जोशी—'ब्राह्मनिज्म बुद्धिज्म एण्ड हिन्दूइज्म', १९७०, (कण्डी) पृ० ३५–३८।

२. द्र०—मर्सिया इलियाडे, 'शमनिज्म', न्यूयार्क १९६४, वही, इमार्टैलिटी एण्ड फ्रीडम, न्यूयार्क १९६४ पृ० २७४ से आगे।

नाना प्रकार को 'तिरच्छान' (तिरश्चीन) विद्याओं एवं लौकिक जोवनव्यापार से भी रहा है।

प्रस्तुत निबन्ध में 'याग' को मोक्षप्रापक धर्मसाधना अथवा निर्वाण-गामिनी प्रतिपदा के रूप में समझा गया है। इस अर्थ में 'योग' जैनधर्म, बौद्धधर्म एवं वैदिक-ब्राह्मण परम्परा से सम्बन्धित अनेक धार्मिक मतों में विद्यमान रहा है। वस्तुतः भारतोय धार्मिक परम्पराएं विश्व के अन्य धर्मों की तुलना में योगप्रधान कही जा सकती हैं। 'योग' भारतीय धार्मिक साधना-पद्धतियों की विशेषता है। भारतीय संस्कृति एवं विचारजगत् में, भारतीय लौकिक तथा धार्मिक जीवन में, साहित्य में, भारतोय कलाओं में और भारतीय जनमानस में 'योग' शब्द से अभिप्रेत होने वाले नाना तत्त्वों का व्यापक प्रभाव विवाद का विषय नहीं कहा जा सकता है।[1] 'योग' की व्यापकता, निरन्तरता एवं प्राचोनता असाधारण एवं आश्चर्यजनक तथ्य हैं। इस निबन्ध का उद्देश्य 'योग' का प्रारम्भिक अवस्थाओं एवं उसके स्वरूपों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से मात्र विहङ्गावलोकन करना है। इस विषय का विस्तृत अध्ययन एक विशाल ग्रन्थ में हो किया जा सकता है।[2]

यहाँ पर यह कहना प्रसङ्गानुकूल होगा कि हमारा दृष्टिकोण परम्परागत न होकर ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक है। इन दोनों दृष्टियों में पर्याप्त मतभेद हैं। हमारे देश में अनेक धार्मिक परम्पराएं हैं, उनमें परस्पर मतैक्य भी हैं, मतान्तर भी हैं। चूँकि 'योग' लगभग सभी धार्मिक मतों में प्रचलित रहा है, अतएव 'योग' के अर्थ एवं स्वरूप में भी मतभेद अथवा समानता की आशा करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त 'याग' के अनेक अर्थ हैं और अनेकार्थक होने से इसे विविध भी मानना पड़ेगा। ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने पर 'योग' की दैवो उत्पत्ति का सिद्धान्त नहीं माना जा सकता, जैसा कि महाभारत अथवा भगवद्गीता[3] में अथवा परवर्ती काल के बहुसंख्यक शैवागमों एवं योग-उपनिषदों में कहा गया है। हम 'योग' की दैवी नहीं, अपितु मानवीय उत्पत्ति मानते हैं तथा अनादिकालिक नहीं, अपितु देश और काल के अन्तर्गत विकसित उच्चतर मानव संस्कृति की एक बहुमूल्य देन

१. देखिये—ई० डब्ल्यु० हाप्किन्स, 'योग टेक्नीक्स इन दि महाभारत' जर्नल ऑफ अमेरिकन आरियन्टल सोशायटी, वर्ष २२ (१९०१) पृ० ३३३–७९।

२. इस विषय पर मर्सिया इलियाडे का योग इमार्टैलिटी एण्ड फ्रीडम नामक ग्रन्थ (न्यूयार्क द्वितीय संस्करण), तथा सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त के अनेक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

३. गीता ३–३।

मानते हैं। 'योग' अथवा ध्यान आर्येतर एवं अवैदिक ही नहीं, वरन् पूर्ववैदिक माना गया है।[1] पुरातत्त्व एवं भाषाविज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन के परिणाम तथा स्वयं वैदिक साहित्य के साक्ष्य के आधार पर यह मान्यता ख्यातिप्राप्त हो चुकी है कि सैन्धव संस्कृति के निर्माता आर्येतर एवं पूर्ववैदिक भारतीय जन थे। उन्हें द्रविड जातीय कहने के लिये जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, वे अपर्याप्त हैं। परन्तु उन्हें आर्यभाषाभाषी ऋग्वैदिक जनों से सम्बन्धित करने के बलात् प्रयत्न और भी अधिक दरिद्र एवं असन्तोषजनक हैं। प्राचीन भारत में 'आर्य' एवं 'द्रविड' शब्दों से सम्बोधित होने वाली दो ही जातियाँ नहीं थीं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक जातियों के लोगों ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध एवं बहुमुखी बनाने में सहयोग किया होगा। प्राचीन भारतीय संस्कृति का इतिहास आर्य एवं आर्येतर, वैदिक एवं अवैदिक विचारादर्शों के पारम्परिक संघर्ष, सम्पर्क एवं मिश्रण के विकास का इतिहास है।

'योग' और 'ध्यान' शब्द हड़प्पा-संस्कृति में प्रचलित थे अथवा नहीं, हमें ज्ञात नहीं है। परन्तु 'ध्यान' अथवा 'योग' के अभ्यास करने वाले मनुष्यों की सत्ता के पुरातात्त्विक एवं असन्दिग्ध प्रमाण ईशा से तीसरी सहस्त्राब्दी पूर्व की इस संस्कृति में उपलब्ध होते हैं। मोहिंजोदड़ों नगर के खण्डहरों से उत्खनन-पश्चात् प्राप्त कुछ मुहरों पर अङ्कित तथा पाषाणखण्डों पर तक्षित चित्र ध्यानस्थ पुरुष और तपस्वी व्यक्ति को चित्रित करते हैं। अतएव ध्यान परम्परा की उत्पत्ति आज से पाँच सहस्र वर्ष पूर्व में हुई माननी पड़ती है।[2]

ऋग्वेद (१०-१३६) के केशीसूक्त में वर्णित 'मौन से उन्मत्त' 'वातरसना मुनि' का दृश्य प्रागैतिहासिक काल के एक प्रकार के 'योगी' का परिचय देता है। यह 'मुनि' अवैदिक परम्परा का एक प्रतिनिधि इस कारण माना गया है कि सूक्तकार उससे प्रभावित एवं उसके असाधारण सिद्धि सरीखे चरित्रों से आश्चर्य में पड़ गया प्रतीत होता है। ऐसा 'मुनि' वैदिक समाज व धर्म में सुपरिचित व्यक्ति नहीं था।

---

१. लालमणि जोशी, पूर्व उल्लिखित ग्रन्थ पृ० ५७-५८, पाण्डे पू० उ० ग्रन्थ, पृ० ३०२-३०५, इलियाडे, योग पृ० १०१, ३५३-३५८, सुनीति कुमार चटर्जी का लेख 'दि कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया' खण्ड १ (कलकत्ता) १९५८, पृ० ८०-८१, हाइनिक जिमर, फिलासाफीज ऑफ इण्डिया, न्यूयार्क १९६० पृ० २८१।

२. जान मार्शल,—'मोहिंजोदड़ो एण्ड दी इन्डस सिविलाइजेशन' खण्ड १, लन्दन, १९३१, पृ० ५२, स्टुअर्ट पिगट,—'प्रिहिस्टरिक इण्डिया', लन्दन, १९५०, पृ० २०२-२०३, इलियाडे, योग, पृ० ३५४-३५६।

अनेक आधुनिक विद्वानों ने योगपद्धति की उत्पत्ति इन्हीं अवैदिक मुनियों, यतियों एवं श्रमणों की संस्कृति से निःसृत मानी है, जिनका विरल उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में सुरक्षित है।

वैदिक काल के मध्य में अवैदिक तथा वैदिक संस्कृतियों का पर्याप्त सम्मिश्रण हो गया था। इस सांस्कृतिक मिश्रण का प्रभाव जैन, बौद्ध, सांख्य, आजीवक एवं प्राचीनतर वेदान्त अथवा उपनिषदों में स्पष्ट दिखायी देता है। न केवल जैन, आजीवक एवं बौद्ध मतों के विशिष्ट विचार, अपितु सांख्य का प्राचीन स्वरूप, 'योग'-पद्धति तथा प्राचीनतर उपनिषदों के योगप्रधान और निवृत्तिपरक विचार सम्भवतः मुनिश्रमण संस्कृति के प्रभाव के परिणाम थे।

मोक्षोपाय अथवा निवृतिमार्ग के रूप में 'योग' की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि यह सभी वर्णों अथवा जातियों के मुमुक्षुओं के लिये खुला था। जैन एवं बौद्ध क्षेत्रों में यह स्त्रियों व पुरुषों के लिये प्राचीन काल से समान रूप से सुलभ था। ब्राह्मण परम्परा में यह उदारता कालान्तर में विकसित हुई।

ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से 'योग' को 'श्रमणयोग' और ब्राह्मणयोग इन दो प्रकारों के रूप में देखा जा सकता है। यह प्रकारभेद 'योग' के ईश्वरवादी एवं अनीश्वरवादी दोनों दिशाओं में विकास-क्रम से सम्बन्धित है। श्रमणयोग का बौद्ध-संस्करण न केवल अनीश्वरवादी है, वरन अनात्मवादी भी है। दूसरी ओर ब्राह्मणयोग ब्रह्मात्मवादी, ईश्वरवादी तथा पुरुषवादी है। यह सम्भव है कि वैदिक-ब्राह्मण परम्परा के प्रभाव में आने के पूर्व 'योग' एक अनीश्वरवादी ध्यानपद्धति मात्र था। अनेक अधिकारी विद्वानों का मत है कि प्रारम्भिक योग एवं सांख्य अनीश्वरवादी थे। जैसा कि विदित है, मध्यकाल में इन दोनों की सेश्वर व्याख्यायें लिखी गयीं और इनकी गणना ब्राह्मणपरम्परा के षट्दर्शनों में होने लगी।

'योग' एक व्यावहारिक ध्यानपरक मार्ग था, जो पतञ्जलिकृत योगसूत्र तथा उस पर लिखे गये व्याख्या-साहित्य में एक ईश्वरवादी दार्शनिक सम्प्रदाय का रूप धारण करता है। योगसूत्र तीसरी शती ईसवी की रचना मानी गयी है। इस ग्रन्थ में उपनिषदिक वेदान्त, प्राचीन सांख्य एवं प्राचीन योगपद्धति का समन्वित रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। आलोचकों ने इस प्रयत्न को असफल माना है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'योगदर्शन' एक अर्वाचीन सम्प्रदाय है, जिसका योग व ध्यान सम्बन्धी अंश प्राचीन योग की परम्परा पर आधारित है।

महाभारत के शान्तिपर्व में सङ्कलित सांख्य एवं योग विषयक सामग्री विविध युगों की तथा विभिन्न स्रोतों पर आधारित है। महाभारत का वर्तमान स्वरूप चतुर्थ

शती ईस्वी में सम्पन्न हुआ माना जाता है। अतएव ईसा पूर्व की अन्तिम छः या पाँच शतियों में 'याग' का विकास-क्रम समझने के लिये प्राचीनतर पालिसुत्तों, उपनिषदों, महाभारत के प्राचीनतर अंशों एवं जैन सूत्राङ्गों की सहायता पर निर्भर करना पड़ता है। प्राचीनतर उपनिषदों का काल इन छः या पाँच शतियों से पूर्व नहीं ले जाया जा सकता है। प्राचीन उपनिषदों की सूची में केवल निम्नलिखित ग्रन्थों की गणना होती है। बृहदारण्यक, छान्दोग्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, कौषीतकी, केन, ईश, कठ, मुण्डक, प्रश्न, श्वेताश्वतर, माण्डूक्य तथा मैत्रायणी। इनमें से प्रथम दो उपनिषद् छठी शती में, उनके बाद के पाँच उपनिषद् पाँचवीं व चौथी शतियों में तथा अन्तिम छः उपनिषद् तीसरी व दूसरी शतियों में रखे जा सकते हैं।[1] मैत्रायणी उपनिषद् निश्चित रूप से अन्य उपनिषदों से बहुत पश्चात् काल की रचना मानी गई है। एक सौ आठ उपनिषदों के संग्रह में सम्मिलित अन्य सभी उपनिषद् पूर्व मध्यकाल अथवा ईसा के पश्चात् की प्रथम सहस्राब्दी की रचनायें हैं।

पालि त्रिपिटक का प्राचीनतम अंश विनय के कुछ अंशों, सुत्तपिटक के बहु-संख्यक सुत्तों एवं ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। अभिधम्मपिटक तीसरी शती ईसा पूर्व के पश्चात् का संग्रह है। इसी प्रकार खुद्दकनिकायान्तर्गत संकलित विमानवत्थु, पेतवत्थु, निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, बुद्धवंश, अपदान एवं चरियापिटक निश्चय ही अशोक के पश्चात् काल की रचनाएँ हैं। बौद्ध योग विषयक सामग्री पालि निकायों के प्राचीनतम भागों में विकसित रूप में मिलती है। इनकी तिथि शाक्यमुनि और अशोक अर्थात् ईसा पूर्व छठी और तीसरी शती के मध्य में रखी जा सकती है। कुछ संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों—यथा उदानवर्ग, गान्धारी धर्मपद, महावस्तु एवं प्राचीन-तम महायान सूत्रों के प्राचीनतर अंशों की साक्षी भी पर्याप्त प्राचीन एवं प्रामाणिक है।

[२]

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त का यह मत उचित लगता है कि "योग" शब्द तीन धातुओं से निकला है। यथा "युजिर् योगे" एक साथ मिलने या युक्त होने के अर्थ में, "युज् समाधौ" एकाग्रता के अर्थ में, और "युज् संयमने" नियन्त्रित अथवा निरुद्ध होने के अर्थ में[2]।

---

१. लालमणि जोशी, पू० उ० ग्रन्थ पृ० २१-३१।

२. सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, 'हिस्टरी आफ इण्डियन फिलासफी' खण्ड १, केम्ब्रिज १९२२, पृ० २२६-२२७।

'योग' शब्द का 'युक्त' अर्थ दो परस्पर विरोधी दिशाओं में प्रयुक्त हुआ है। ब्राह्मण योग के परवर्ती ग्रन्थों में जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन 'योग' कहा गया है। परमहंस उपनिषद् (१-२) में **"परमात्मात्मनोरेकत्वं"** तथा योगतत्त्वोपनिषद् (श्लोक १०७) में **"समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः"** का योग अथवा समाधि कहा गया है। भक्तिमार्गी परम्पराओं में 'योग' का यही सामान्य अर्थ है। इस दृष्टि से 'योग' मिलन, एकता अथवा संयोग का नामान्तर है। श्रमणयोग के अनेक ग्रन्थों में 'योग' शब्द का प्रतिकूल अर्थ है। पालि निकायों में 'योग' बन्धन का पर्याय है। **"चत्तारो योगा" "चत्तारो आसवा"** काम, भव, दिट्ठि एवं अविद्या नामक याग एवं आस्रव हैं, जो मार के पाश कहे गये हैं। सांख्य मत में पुरुष का प्रकृति से सम्बन्ध अथवा मिलन 'योग' कहा गया है। इस संयोग से वियोग को कैवल्य कहा गया है। जैन मत में भी आत्मा (जीव) का जड (अजीव) पदार्थों के साथ सम्मेलन 'योग' कहलाता है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि श्रमणयोग में अथवा बौद्ध पालि एवं संस्कृत ग्रन्थों में 'योग' समाधि का और ध्यान का पर्यायवाची नहीं है। हम इस तथ्य की ओर ध्यानाकर्षित करना चाहते हैं कि 'योग' शब्द अपनी व्युत्पत्ति के धातु के अर्थ का अतिक्रमण करते हुए अनेकार्थक हो गया। अतएव मात्र व्युत्पत्ति से इसका अर्थ सम्यक् रूपेण स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। आचार्य धर्मोत्तर ने लिखा है। **"योगः समाधिः"। स यस्यास्ति स योगी।** योग और समाधि समानार्थक हैं। तीसरा समानार्थक शब्द ध्यान अथवा ज्ञान है। इस परम्परा में 'योगी' शब्द श्रमण मुनि, ध्यानी, समाहित एवं प्रतिसंलीन का पर्यायवाची है। यद्यपि शाक्यबुद्ध को पालि ग्रन्थों में योगी नहीं कहा गया है, तथापि उन्हें प्रथम बौद्ध योगी कहने में स्थविरवादी सौगतों को आपत्ति नहीं होगी। वस्तुतः पहले चार निकायों मे हमें 'योगी' शब्द नहीं मिला है। प्राचीन वैदिक साहित्य में भी यह शब्द कदाचित् प्रयुक्त नहीं हुआ है। परन्तु खुद्दकनिकाय के कुछ ग्रन्थों में एवं मिलिन्दपञ्ह में और उनके पश्चात् के ग्रन्थों में 'योगी' शब्द सुपरिचित है। सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र में 'योगिनो योगाचारा' वाक्य प्रयुक्त हुआ है। 'योगावचर' शब्द योगचर्या करने वाले श्रमण का सुविदित नामान्तर है। प्रथम शती ईसा पूर्व में प्रकाशित काश्यपपरिवर्त नामक सूत्र में 'योग' शब्द प्रयत्न के अर्थ में व ध्यान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और 'योगाचारो भिक्षु' को 'योगी' कहा गया है। महायान का 'योगाचार' आम्नाय ध्यान, योग के लिये प्रसिद्ध है। पालि ग्रन्थों में भी 'योग' शब्द अभ्यास तथा प्रयत्न के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु प्राचीन पालि ग्रन्थों में 'योग' शब्द समाधि शब्द का पर्यायवाची नहीं है। पटिसल्लान (प्रतिसंलीन) बहुधा समाधि का समानार्थक माना गया है। उदाहरणार्थ :—

पटिसल्लाने भिक्खवे, योगमापज्जथ।
पटिसल्लानो भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाति ॥

(संयुत्तनिकाय खण्ड ३, पृ० ७४)

तथा—

समाधिं भिक्खवे, भावेथ। समाहितो भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाति।

(संयुत्तनिकाय, खण्ड ३, पृ० ७४)

अनेक स्थलों पर बौद्धधर्म का सार निम्नलिखित गाथा द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।[1]

सीलं समाधि पञ्ञा च विमुत्ति च अनुत्तरा।
अनुबुद्धा इमे धम्मा गोतमेन यसस्सिना ॥

तथाकथित बौद्ध अष्टाङ्गमार्ग वस्तुतः शील, समाधि एवं प्रज्ञा रूपी धर्मस्कन्धों वाला त्रिविध मार्ग है। यही बौद्ध योग का विषय है। अर्हत् उपतिस्स रचित 'विमुत्तिमग्ग' एवं आचार्य बुद्धघोष विरचित 'विसुद्धिमग्ग' इसी त्रिविध योजना पर आधारित है।

गौतम बुद्ध प्रथम 'योगी' अथवा प्रथम 'ध्यानी' माने जाते हैं। उनके समय में उनकी ख्याति एक 'ध्यानी' एवं ध्यानपथ के उपदेष्टा के रूप में भी थी।[2]

झायी चेव सो भवं गोतमं अहोसि झानसीली च।
सब्बं च पन सो भवं गोतमो झानं वण्णेसि ॥

स्वयं तथागत ने स्मृति, ध्यान, समाधि, शमथ, विपश्यना एवं पटिसल्लान (प्रतिसंलीन आदि के महत्त्व पर जोर डाला था। स्मृति (पालि=सति) तथा समाधि का महत्त्व इतने से स्पष्ट हो जाता है कि स्मृति एवं समाधि की गणना पाँच 'इन्द्रियों' पाँच 'बलों' सप्त बोध्यङ्गों, तथा मार्ग के अष्टाङ्गों में की गयी है। पालि संहिताओं में दो स्थलों पर बुद्धवचन के रूप में चार स्मृत्युपस्थानों की साधना को निर्वाण का एक मात्र मार्ग कहा गया है।[3]

एकायनो अयं भिक्खवे, मग्गो सत्तानं विसुद्धिया·······
निब्बानस्स सच्छिकिरियाय:—यदिदं चत्तारो सतिपट्ठाना।

---

१. दीघनिकाय, खण्ड २, पृ० ७५।

२ मज्झिमनिकाय, खण्ड :, पृ० ९५।

३. दीघनिकाय तथा मज्झिमनिकाय "महासतिपट्ठानसुत्त"।

स्मृति शमथभावना के लिये परमावश्यक है। स्मृति की प्राप्ति न होने से विपश्यना का अभाव रहता है और विपश्यना के अभाव में प्रज्ञाचक्षु का उन्मीलन नहीं होता है। वस्तुतः शमथ एवं विपश्यना का विकास एक साथ होता है। इसी कारण इन्हें युगनद्ध कहा गया है :

इमे द्वे धम्मा युगनद्धा वत्तन्ति—समथो च विपस्सना च।

(मज्झिमनिकाय खण्ड ३, पृ० ३९१)

योग अथवा समाधि का चरम लक्ष्य परमार्थ की प्राप्ति करना है। कामधातु, रूपधातु एवं अरूपधातु से परे निर्वाणधातु अथवा धर्मधातु को अधिगत करना ही बौद्ध योग अथवा समाधि का एकमात्र उद्देश्य है। चित्त की एकाग्रता समाधि है। चार स्मृत्युपस्थान इसके निमित्त और चार सम्यक् प्रधान इसके परिष्कार हैं। इनके अभ्यास, विकास एवं इनकी वृद्धि को समाधिभावना कहा गया है।

"या चित्तस एकग्गता अयं समाधि, चत्तारो सतिपट्ठाना समाधिनिमित्ता, चत्तारो सम्मप्पधाना समाधिपरिक्खारा, या तेसं येव धम्मानं आसेवना भावना, बहुलीकम्मं-अयं एत्थ समाधिभावना[१]।"

ध्यान एवं समाधि विषयक जितना साहित्य प्राचीन भारत में बौद्धों ने लिखा, उसकी समानता भारत अथवा विश्व के किसी अन्य धार्मिक परम्परा का एतद्विषयक साहित्य नहीं कर सकेगा। चीन एवं जापान में ध्यानमार्ग पर आधारित 'चान' एवं 'जेन' सम्प्रदायों का प्रभावशाली विकास बौद्ध योग की महान् परम्परा के विश्वव्यापी स्वरूप का परिचायक माना गया है।

[३]

पालि निकायों एवं प्राचीन उपनिषदों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन उपनिषदों में ध्यान-योग-समाधि का स्थान साधारण महत्त्व का था। योग शब्द बृहदारण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषदों में अज्ञात है। समाधि शब्द सभी प्राचीन उपनिषदों में अविदित है। इसी प्रकार ध्यान शब्द का उल्लेख चित्त, विज्ञान, बल, अन्न आदि के सापेक्षिक महत्त्व के प्रसङ्ग में प्रथम बार छान्दोग्य में हुआ है। बृहदारण्यक का सुविदित वाक्य **"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"** ध्यान या योग को प्रमुखता नहीं देता है। अन्य प्राचीन उपनिषदों में ध्यान-योग का प्रारम्भ होता देखा जा सकता है। पातञ्जल योग के अनेक

---

१. मज्झिमनिकाय, खण्ड १, पृ० ३७१।

तत्त्वों को इन उपनिषदों में ढूढ़ा जा सकता है। कठोपनिषद् (६–११) में सर्वप्रथम योगशब्द का पारिभाषिक प्रयोग हुआ है। 'तां योगमिति मन्यन्त स्थिरामिन्द्रिय-धारणाम्।' यह ग्रन्थ 'योगविधि' का एवं 'अध्यात्मयोगाधिगमेन' प्राप्त होने वाली हर्ष व शोक से रहित अवस्था का उल्लेख करता है। परन्तु आत्मा का साक्षात्कार देव की कृपा पर निर्भर है, न कि मात्र ध्यानयोग पर। **"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।"** यह भी ध्यातव्य है कि नचिकेता ने यह 'योगविधि' किसी वैदिक ब्राह्मण ऋषि से नहीं, वरन् मृत्यु (मार अथवा यम) से सीखी थी। इस पुराकथा में योगविधि के एक वास्तविक ऐतिहासिक आचार्य का नाम लुप्त हो गया है। यहाँ पर यह कहना प्रसङ्गानुकूल लगता है कि बृहदारण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषदों में ब्रह्मविद्या के मौलिक एवं मान्यता प्राप्त आचार्य पाञ्चाल नरेश, प्रवाहण जैवालि जैसे महापुरुष 'राजर्षि' हैं, न कि 'ब्रह्मर्षि।' श्वेताश्वतर उपनिषद् (१–३) में 'ध्यानयोग' द्वारा 'देवात्मशक्ति' देखने का उल्लेख सुविदित है। यह ग्रन्थ ध्यान व योग से सम्बन्धित अनेक तत्त्वों, सिद्धियों, योगाग्निमय शरीर, कपिल ऋषि एवं 'सांख्ययोग' के अति-रिक्त 'भक्ति' शब्द का भी उल्लेख करता है। **मुण्डक उपनिषद्** जैसा कि इसके नाम से संकेतित होता है, मुण्डकों अथवा भिक्षुओं की कृति है। इस ग्रन्थ में चारों वेदों तथा छः वेदाङ्गों को 'अपरा विद्या' के अन्तर्गत रखा गया है और उसे अक्षर अर्थात् ब्रह्म को जानने की 'पराविद्या' से हीनतर कहा गया है। यह उपनिषद् यतियों, भिक्षुओं एवं वीतराग ऋषियों का तथा 'सन्यास-योग' का उल्लेख करता है।

मैत्रायणी उपनिषद् ग्रन्थ उपर्युक्त सभी उपनिषदों के पश्चाद्वर्ती काल का माना गया है। यह प्रथम उपनिषद् है, जो योग के छः अंगों की एक सूची प्रस्तुत करता है—**"प्राणायामः प्रत्याहारो ध्यानं धारणा तर्कः समाधिः षडङ्ग इत्युच्यते योगः।"** परवर्ती काल के ध्यानविन्दूपनिषद् तथा योगचूडामणि उपनिषद् में भी योग के छः अङ्गों की सूची मिलती है, जिसमें 'तर्क' अनुपस्थित है और अङ्गों का क्रम भी अधिक व्यवस्थित है।

"आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्॥"

मैत्रायणी-उपनिषद् में ॐ तथा प्राण की एकता को 'योग' माना गया है। छान्दोग्य-उपनिषद् के प्रारम्भ में ही ॐ ब्रह्म का प्रतीक प्रतीत होता है। योगसूत्र में 'प्रणव' को ईश्वर का वाचक कहा गया है। प्रत्याहार की दिशा में छान्दोग्य उपनिषद् एवं प्राणायाम की दिशा में बृहदारण्यक उपनिषद् संकेत करते हैं। परन्तु योग के अष्टाङ्गों का क्रमबद्ध वर्णन सर्वप्रथम योगसूत्र में ही उपलब्ध होता है।

"अथ योगानुशासनम्" वाक्य से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ में प्राचीन समय से विकसित योगविद्या का प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया था। गीता में 'योग' शब्द के अनेक अर्थ किये गये हैं। श्रमण योग की दृष्टि से अध्याय ६ श्लोक २३ में **"दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्"** ध्यान देने योग्य है। इसी प्रकार अध्याय २ के ५२-७२ श्लोक भी ध्यातव्य हैं। योग के आठ अथवा छः अङ्गों का क्रमबद्ध उल्लेख गीता में नहीं मिलता, परन्तु गीता को एक 'योग-शास्त्र' कहा गया है। एक ओर आसन, संयम, इन्द्रियनिग्रह, त्याग, ध्यान एवं समाधि द्वारा प्राप्य स्थिरबुद्धि अथवा स्थितप्रज्ञ की अवस्था की प्रशंसा की गई है और स्थिर समाधि वाले योगी को मुनि की संज्ञा दी गयी है। दूसरी ओर ध्यान-योग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, सांख्ययोग, बुद्धियोग, समत्वयोग आदि शब्दों के द्वारा 'योग' का लौकिक व धार्मिक कृत्यों के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ा गया है। अन्त में सभी धर्मों अर्थात् सर्व प्रकार के योगों और दायित्वों का परित्याग करके भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाकर ही सब क्लेशों से मुक्ति की घोषणा की गयी है। गीता में प्रतिपादित केन्द्रीय विचार वैष्णव भक्ति है, जिसे गुह्यतम विद्या अथवा योग कहा गया है। यद्यपि गीता को एक उपनिषद् कहा गया है, तथापि इसकी विद्या उपनिषदों से भिन्न प्रतीत होती है और जिस योग को गुह्य कहा गया है, वह गुह्यसमाज में प्रतिपादित योग से सर्वथा भिन्न है। गीता का योग पातञ्जल योग से भी भिन्न है। इसको योग-शास्त्र उसी अर्थ में समझा जा सकता है, जिस अर्थ में हेमचन्द्र ने अपने एक ग्रन्थ को 'योगशास्त्र' कहा है। कुछ आधुनिक लेखकों ने जैन श्रावकाचार को 'योग' की संज्ञा दी है। यह उल्लेख है कि गीता में योग के आचार्य श्रीकृष्ण एक गृहस्थ हैं और योगविद्या का शैक्ष्य अर्जुन भी गृहस्थ हैं। यह कोई नवीन बात नहीं है। उपनिषदों के अधिकांश आचार्य एवं अन्तेवासी गृहस्थ ही थे। पालि ग्रन्थों में उपासक 'अर्हतों' की लम्बी सूची सुविदित है।[1] महायान सूत्रों में भिक्षु और उपासक में बोधिचर्या अथवा पारमिताभ्यास की दृष्टि से कोई भेद नहीं माना गया है।

गीता के अतिरिक्त महाभारत का एक अन्य भाग योग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह शान्तिपर्व के अन्तर्गत सङ्कलित 'मोक्षधर्म' नामक अंश है। परन्तु योग के स्वरूप का इस ग्रन्थांश में निरूपण करना अति कठिन है। योग को लोकप्रिय, बहु-उद्देशीय एवं विविधार्थक बनाने में महाभारत का सर्वाधिक योगदान रहा है।

---

१. अङ्गुत्तरनिकाय, खण्ड ३ पृ० १४८-१५९ जहाँ पर इक्कीस गृहपति अर्हतों की सूची दी हुई है।

हमारी समझ के अनुसार महाभारत में वे सभी कार्य योग के अन्तर्गत हैं, जो जीवात्मा को ब्रह्म अथवा ईश्वर की ओर ले जाते हैं और साथ ही सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। तप, जप, ध्यान, त्याग, इन्द्रियों का नियन्त्रण करना, मन का समाहित होना, संन्यास आदि व्यष्टिगत व समष्टिगत रूप में योग माने गये हैं। मोक्ष के मार्ग में जहाँ उपनिषदों में आत्मज्ञान का प्राधान्य है, वहाँ महाभारत और गीता में भगवान् (विष्णु) की भक्ति का प्राबल्य दृष्टिगोचर होता है। परन्तु कुछ श्लोकों में योग का श्रमण संस्करण भी प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(गीता, २-७१-७२)

यथा स्वनुष्ठितं ध्यानं तथा कुर्वन्ति योगिनः।
महर्षयो ज्ञानतृप्ता निर्वाणगतमानसाः॥

(महाभारत, शान्ति० १९५-२)

अनिर्वेदो गतक्लेशो गततन्द्रिरमत्सरी।
समादध्यात् पुनश्चेतो ध्यानेन ध्यानयोगवित्॥

× × ×

सुखेन तेन संयुक्तो रंस्यते ध्यानकर्मणि।
गच्छन्ति योगिनो ह्येवं निर्वाणं तन्निरामयम्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व १९५-१४,२२)

मोक्षप्रापक धर्मव्यापाररूपी ध्यानयोग के साथ साथ प्राचीन भारत में 'योग' के अन्य अनेक स्वरूपों का भी विकास हुआ था। बुद्ध और वर्धमान के युग में श्रमण एवं ब्राह्मण परम्परा के तथा अन्य अब लुप्तप्राय परम्पराओं के तथा-कथित 'योगी' अथवा 'परिव्राजक' बहुसंख्या में थे। उदाहरणार्थ पालि उदान (६-४-९) में एक स्थल पर नाना तैर्थिकों की श्रावस्ती नगर में उपस्थिति का उल्लेख करते हुए कहा गया है—"**नानातित्थिया समणब्राह्मणपरिब्बाजका सावत्थियं पटिवसन्ति नानादिट्ठिका नानाखन्तिका नानारुचिका नानादिट्ठिनिस्सयनिस्सिता।**" ब्रह्मजालसुत्त के समय से विसुद्धिमग्ग के समय तक विविध प्रकार के कुक्कुरव्रतधारी, गोव्रतधारी हत्थयोगी, पत्तयोगी, दण्डधारी, जटाधारी, नग्न और चीवर पहनने वाले, भक्ष्याभक्ष्य

का भेद न करने वाले, कठोर शारीरिक यातनाओं को सहन करने वाले, तथा अन्य कई प्रकार के योगियों के उल्लेख साहित्य में ही नहीं, वरन् कभी-कभी शिलालेखों में अथवा मूर्तिकला में भी हैं। वस्तुतः बुद्ध के समय से लेकर आज तक भारत में विविध एवं विचित्र योगियों की परम्परा बनी हुई है। वैखानसस्मार्तसूत्र में औदुम्बर, वैरिञ्च, बालखिल्य एवं फेनप इन चार प्रकार के सपत्नीक योगियों के अतिरिक्त कूटीचक, बहूदक, हंस एवं परमहंस कहे जाने वाले मुमुक्षुओं का तथा 'सारङ्ग' 'एकार्ष्य' एवं 'विसारग' नामक योगी-वर्गों का वर्णन हुआ है। 'सारङ्ग' योगियों की एक शाखा ऐसी थी जो 'विमार्ग' योग का अनुगमन करती थी। यह अनीश्वरवादी शाखा थी। जहाँ तक हमारी सूचना की पहुँच है 'सारङ्ग' 'एकार्ष्य' एवं 'विसारग' शब्द वैखानसस्मार्तसूत्र के अतिरिक्त अन्यत्र अज्ञात हैं[1]। योगियों की एक तालिका वराहमिहिर के बृहज्जातक (१५-१) में उपलब्ध है, जिसमें निम्नलिखित सात प्रकार के प्रव्रजितों की गणना की गई है—

शाक्य, आजीवक, भिक्षु, वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक, निर्ग्रन्थ तथा वन्यासन। बृहज्जातक के टीकाकार भट्ट उत्पल ने जैन कालकाचार्य के साक्ष्य के आधार पर निम्नलिखित नामों का उल्लेख किया है—तपस्वी, कापालिक, रक्तपट, एकदण्डी, यति, चरक तथा क्षपणक[2]। यह उल्लेख्य है कि कपालियों का उल्लेख ललितविस्तर तथा मैत्रायणी-उपनिषद में भी हुआ है। वस्तुतः कापालिक-पाशुपत के संस्थापक आचार्य नकुलीश एक प्रसिद्ध योगी थे, जिनका समय ईसा की दूसरी शती माना गया है। पाशुपत सूत्र में पांच 'अर्थों', अथवा तत्त्वों में से एक तत्त्व 'योग' है। चीनी बौद्ध परिव्राजकाचार्य ख्वानच्वाङ् ने भारत के अनेक भागों में पाशुपत योगियों को देखा था। योग के विकास में शैव आम्नायों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ललितविस्तर महायानसूत्र के 'दुष्करचर्या परिवर्त' में नाना प्रकार के धार्मिक व्रताभ्यासकों की सूची एक पूरे पृष्ठ में विस्तृत है। यह सभी विशुद्ध ध्यानयोग के अन्तर्गत नहीं आते, परन्तु 'योग' शब्द के अन्तर्गत आने वाले विचारादर्शों के बाहर भी इन्हें नहीं रखा जा सकता है। इसी कारण प्रारम्भ में ही हमने निवेदन किया था कि 'योग क्या है' इस प्रश्न का एक उत्तर नहीं हो सकता है। योग के विकास का इतिहास हमें बताता है कि 'योग' योग की सभी परिभाषाओं का अतिक्रमण करता

---

१. वैखानसस्मार्तसूत्र, सम्पादक डब्ल्यु० कैलेन्ड, कलकत्ता, १९२९, द्र०—इलियाडे, योग पृ० १३ -१४०।

२. द्र —ए० एल० बाशम, 'हिस्टरी एण्ड डाक्ट्रिन्स आफ दि आजीविकास्' लन्दन १९५१ पृ० १६९-१७३।

हमारी समझ के अनुसार महाभारत में वे सभी कार्य योग के अन्तर्गत हैं, जो जीवात्मा को ब्रह्म अथवा ईश्वर की ओर ले जाते हैं और साथ ही सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। तप, जप, ध्यान, त्याग, इन्द्रियों का नियन्त्रण करना, मन का समाहित होना, संन्यास आदि व्यष्टिगत व समष्टिगत रूप में योग माने गये हैं। मोक्ष के मार्ग में जहाँ उपनिषदों में आत्मज्ञान का प्राधान्य है, वहाँ महाभारत और गीता में भगवान् (विष्णु) की भक्ति का प्राबल्य दृष्टिगोचर होता है। परन्तु कुछ श्लोकों में योग का श्रमण संस्करण भी प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(गीता, २-७१-७२)

यथा स्वनुष्ठितं ध्यानं तथा कुर्वन्ति योगिनः।
महर्षयो ज्ञानतृप्ता निर्वाणगतमानसाः॥

(महाभारत, शान्ति० १९५-२)

अनिर्वेदो गतक्लेशो गततन्द्रिरमत्सरी।
समादध्यात् पुनश्चेतो ध्यानेन ध्यानयोगवित्॥

× × ×

सुखेन तेन संयुक्तो रंस्यते ध्यानकर्मणि।
गच्छन्ति योगिनो ह्येवं निर्वाणं तन्निरामयम्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व १९५-१४,२२)

मोक्षप्रापक धर्मव्यापाररूपी ध्यानयोग के साथ साथ प्राचीन भारत में 'योग' के अन्य अनेक स्वरूपों का भी विकास हुआ था। बुद्ध और वर्धमान के युग में श्रमण एवं ब्राह्मण परम्परा के तथा अन्य अब लुप्तप्राय परम्पराओं के तथा-कथित 'योगी' अथवा 'परिव्राजक' बहुसंख्या में थे। उदाहरणार्थ पालि उदान (६-४-९) में एक स्थल पर नाना तैर्थिकों की श्रावस्ती नगर में उपस्थिति का उल्लेख करते हुए कहा गया है—"**नानातित्थिया समणब्राह्मणपरिब्बाजका सावत्थियं पटिवसन्ति नानादिट्ठिका नानाखन्तिका नानारुचिका नानादिट्ठिनिस्सयनिस्सिता।**" ब्रह्मजालसुत्त के समय से विसुद्धिमग्ग के समय तक विविध प्रकार के कुक्कुरव्रतधारी, गोव्रतधारी हत्थयोगी, पत्तयोगी, दण्डधारी, जटाधारी, नग्न और चीवर पहनने वाले, भक्ष्याभक्ष्य

का भेद न करने वाले, कठोर शारीरिक यातनाओं को सहन करने वाले, तथा अन्य कई प्रकार के योगियों के उल्लेख साहित्य में ही नहीं, वरन् कभी-कभी शिलालेखों में अथवा मूर्तिकला में भी हैं। वस्तुतः बुद्ध के समय से लेकर आज तक भारत में विविध एवं विचित्र योगियों की परम्परा बनी हुई है। वैखानसस्मार्तसूत्र में औदुम्बर, वैरिञ्च, बालखिल्य एवं फेनप इन चार प्रकार के सपत्नीक योगियों के अतिरिक्त कूटीचक, बहूदक, हंस एवं परमहंस कहे जाने वाले मुमुक्षुओं का तथा 'सारङ्ग' 'एकार्ष्य' एवं 'विसारग' नामक योगी-वर्गों का वर्णन हुआ है। 'सारङ्ग' योगियों की एक शाखा ऐसी थी जो 'विमार्ग' योग का अनुगमन करती थी। यह अनीश्वरवादी शाखा थी। जहाँ तक हमारी सूचना की पहुँच है 'सारङ्ग' 'एकार्ष्य' एवं 'विसारग' शब्द वैखानसस्मार्तसूत्र के अतिरिक्त अन्यत्र अज्ञात हैं[1]। योगियों की एक तालिका वराहमिहिर के बृहज्जातक (१५-१) में उपलब्ध है, जिसमें निम्नलिखित सात प्रकार के प्रव्रजितों की गणना की गई है—

शाक्य, आजीवक, भिक्षु, वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक, निर्ग्रन्थ तथा वन्यासन। बृहज्जातक के टीकाकार भट्ट उत्पल ने जैन कालकाचार्य के साक्ष्य के आधार पर निम्नलिखित नामों का उल्लेख किया है—तपस्वी, कापालिक, रक्तपट, एकदण्डी, यति, चरक तथा क्षपणक[2]। यह उल्लेख्य है कि कपालियों का उल्लेख ललितविस्तर तथा मैत्रायणी-उपनिषद में भी हुआ है। वस्तुतः कापालिक-पाशुपत के संस्थापक आचार्य नकुलीश एक प्रसिद्ध योगी थे, जिनका समय ईसा की दूसरी शती माना गया है। पाशुपत सूत्र में पाँच 'अर्थों', अथवा तत्त्वों में से एक तत्त्व 'योग' है। चीनी बौद्ध परिव्राजकाचार्य श्वानच्वाङ् ने भारत के अनेक भागों में पाशुपत योगियों को देखा था। योग के विकास में शैव आम्नायों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ललितविस्तर महायानसूत्र के 'दुष्करचर्या परिवर्त' में नाना प्रकार के धार्मिक व्रताभ्यासकों की सूची एक पूरे पृष्ठ में विस्तृत है। यह सभी विशुद्ध ध्यानयोग के अन्तर्गत नहीं आते, परन्तु 'योग' शब्द के अन्तर्गत आने वाले विचारादर्शों के बाहर भी इन्हें नहीं रखा जा सकता है। इसी कारण प्रारम्भ में ही हमने निवेदन किया था कि 'योग क्या है' इस प्रश्न का एक उत्तर नहीं हो सकता है। योग के विकास का इतिहास हमें बताता है कि 'योग' योग की सभी परिभाषाओं का अतिक्रमण करता

---

१. वैखानसस्मार्तसूत्र, सम्पादक डब्ल्यु॰ कैलेन्ड, कलकत्ता, १९२९, द्र॰—इलियाडे, योग पृ॰ १३ -१४०।

२. द्र — ए॰ एल॰ बाशाम, 'हिस्टरी एण्ड डाक्ट्रिन्स आफ दि आजीविकास्' लन्दन १९५१ पृ॰ १६९-१७३।

गया है। यदि आप चाहें तो योग के विकास को योग का ह्रास कह सकते हैं। परन्तु यह दृष्टिभेद का विषय है। पाञ्चरात्र भागवत संहिताओं, शाक्ततन्त्रों, शैव आगमों, वज्रयानी तन्त्रों तथा ब्राह्मणपरम्परा के पुराणों एवं उपपुराणों में योग के जो स्वरूप प्रगट हुए, उनमें वैदिक कर्मकाण्ड, सांख्यदर्शन, पूर्वमीमांसा, उपनिषदों का रहस्यात्मक ब्रह्मात्मवाद, बौद्ध श्रामण्य एवं ध्यानपरम्परा, पातञ्जलयोग, शैव-शाक्त उपासना एवं वैष्णव भक्ति के अतिरिक्त कुछ मध्य एशिया से आये हुए विचारा-दर्शों का अभूतपूर्व मिश्रण देखा जा सकता है। यह यागों का संयोग कहा जा सकता है। बौद्ध ग्रन्थों में सुविदित धूतगुणों, जैन धर्म में प्रस्तावित कठोर संवर एवं निर्जरा तथा पातञ्जल योग द्वारा प्रतिपादित साधना का उग्र रूप हमें नहीं भूलना चाहिए। योग के दुष्कर बाह्य स्वरूपों को उसके समाधि पक्ष से पूर्णरूपेण अलग करना कठिन है। यह दोनों ही स्वरूप प्राचीन काल से चले आ रहे थे। मध्यकालीन भारत में समाधि-भावना का स्थान मन्त्रयोग, लययोग और ईश्वराराधन ने ले लिया, जिसको श्रमणयोग का लोप कहा जा सकता है। धुताङ्गों[1], संवरों एवं यमनियमों का स्थान हठयोग और शक्तिसाहचर्य ने ले लिया प्रतीत होता है। दूसरी दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि योग के सभी स्वरूप मध्य युग में भक्ति और सिद्धि से सम्बन्धित धाराओं के प्रवाह में प्रवाहित होकर अन्त में लुप्तप्राय हो गये। भक्ति का 'फैशन' और सिद्धियों का आकर्षण आज भी लोकप्रिय हैं।

योग के प्रारम्भिक विकास का उपर्युक्त सर्वेक्षण अत्यन्त संक्षिप्त तथा अनेक दृष्टियों से अपूर्ण है। जैन साहित्य की सामग्री का उपयोग न कर सकने का एकमात्र कारण अज्ञान है। योग का ऐतिहासिक अध्ययन करना योगाभ्यास करने से भिन्न है। हमें योगमार्ग पर चलने का लेशमात्र भी अनुभव नहीं है। अतएव योग के व्यावहारिक पक्ष पर प्रकाश डालना हमारे अधिकार में नहीं हो सकता।

[४]

उपसंहार रूप में बौद्ध ग्रन्थों में उपलब्ध योगविषयक सामग्री का कुछ बौद्धेतर साहित्य की सामग्री के साथ तुलना की दिशा में संकेतमात्र कर देना यहाँ पर अप्रासङ्गिक नहीं होगा।

'ईश्वर' एवं 'प्रणव' को छोड़कर योगसूत्र के अन्य अधिकांश पारिभाषिक शब्द पालि एवं संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों में सुविदित हैं। महायान ग्रन्थों में यह दो शब्द

---

१. धुतागों अथवा धूतगुणों की सूची विसुद्धिमग्ग का दूसरा प्रकरण तेरह धुतंग, धर्मसंग्रह ६२ में द्वादश धूतगुणों की ही सूची है।

भी सुपरिचित हैं। बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर तथा 'ओम् मणि पद्मे हूँ' का स्मरण कराना पर्याप्त होगा। तिब्बती बौद्ध मत में अवलोकितेश्वर का और स्वयम्भूपुराण में प्रतिपादित आदिबुद्ध का ईश्वर के रूप में स्मरण वही महत्त्व रखता है, जो योग-सूत्र में ईश्वर का है। श्रमणयोग की ईश्वरपरक व्याख्या नेपाली बौद्ध परम्परा तथा पातञ्जल योग की समान विशेषता है। परन्तु बौद्ध योग की ईश्वरपाक्षिक परम्परा उन वैष्णव पुराणों के पश्चात् काल की उपज है, जिसमें शाक्यमुनि को विष्णु का नवाँ अवतार घोषित कर दिया गया था। सद्धर्म के इतिहास के प्रथम एक सहस्र वर्षों में बौद्धयोग विशुद्ध श्रमणयोग के रूप में विकसित हुआ था। इस काल में ब्राह्मणयोग और श्रमणयोग के बीच एक मौलिक दृष्टिभेद था, जिसे 'आत्मा' का प्रश्न कह सकते हैं। एक ओर **'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'** (बृहदारण्यक उप० २-४-५), **'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्'** (मुण्डक उप० २-२-६), **'आत्मानं सततं ज्ञात्वा कालं नय महामते'** (नादविन्दूप० २१), **'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः'**, (अहिर्बुध्न्यसंहिता, ३१-१५) और **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वमुमुक्षुभिः'** (ध्यानविन्दूपनिषद, ९), **'ओम् इति ब्रह्म'** (तैत्तिरीय उप० १-८) इत्यादि द्वारा आत्मवाद, ब्रह्मवाद अथवा ब्रह्मात्मवाद का शाश्वतवादी विचार ध्याता, ध्यान और ध्येय के मूल में निहित था। दूसरी ओर **'सब्बे धम्मा अनत्ता ति यदा पञ्ञाय पस्सति, अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया।'** (धम्मपद २७९), **'निरात्मानः सर्वधर्माः'** (वज्रच्छेदिका अध्याय १७), **'सर्वमात्मशून्यम्'** (तर्कभाषा, पृ० ३४), **'मुक्तिस्तु शून्यतादृष्टिस्तदर्थाशेषभावना'** (तत्रैव) **'आत्मा तीर्थ्यैः कल्प्यते नित्यरूपो'** (मध्यमकावतार, ६-१४२), **'आत्मदृष्टौ हि विनष्टाः (निविष्टाः ?) सर्वतीर्थिकाः'** (तत्त्वसंग्रह, ३३२४) और **'विंशतिशिखर-समुद्गतः सत्कायदृष्टिशैलः'** (महाव्युत्पत्तिः ४६८४) इत्यादि द्वारा सर्वविकल्पजाल-वासनाप्रपञ्चविगत शान्ति (निर्वाण) को ध्यान और समाधि का लक्ष्य माना गया था, इस आधारभूत दृष्टिभेद के कारण समाधि के परिष्कारों में भेद होना स्वाभाविक था। परन्तु भेदों के विस्तार में न जाकर हम संक्षेप में तुलनीय सामग्री की ओर ध्यानाकर्षण की चेष्टा करेंगे। योग साधना का फल दृष्टधर्म दोषों अथवा आस्रवों का विनाश है। योगी निष्पाप एवं शुद्ध होता है। इस दृष्टि से गीता में उक्त **'योगी विगतकल्मषः'** (६-२८), **'ऋषयः क्षीणकल्मषाः'** (५-२५), मुण्डकोपनिषद् (३-१-५) में उल्लिखित **'यतयः क्षीणदोषाः'** तथा (वही ३-२-६) **'यतयः शुद्धसत्त्वाः'** का तथा दूसरी ओर धम्मपद (४२०) के **'खीणासवं अरहन्तं'** और लङ्कावतारसूत्र (१०-६२९) के **'योगिनां शुद्धचित्तानां'** की स्मृति कराता है। गीता (६-२०) का **'चित्तं निरुद्धं**

योगसेवया' जहाँ योगसूत्र (१–२) के **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** से तुलनीय है, वहाँ बोधिचर्यावतारपञ्जिका (पृ० १३७) के **'शमथः चित्तैकाग्रतालक्षणः'** की ओर भी संकेत करता है। गीता में **'युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु'** (६–१७) आदि के द्वारा बौद्ध योगी के मध्यम मार्ग की दिशा में और साथ ही योगसूत्र द्वारा प्रतिपादित दुष्करचर्या के प्रतिकूल उपदेश हुआ है। सिद्धियों की परम्परा योगसूत्र व बौद्ध ध्यान-साहित्य की समान विशेषता है। गीता में भक्ति का प्रतिपादन सर्वोपरि होने के कारण श्रमणयोग के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली शक्तियों का उल्लेख नहीं हुआ है। शान्तिपर्व का ध्यानयोगवर्णन सिद्धि का उल्लेख करता है। 'आस्रवक्षयज्ञान' नामक अभिज्ञा बौद्धयोग की विशेषता है। श्रमणयोग के दो प्राचीनाचार्य आलार कालाम तथा रुद्रक रामपुत्र थे। आचार्य अश्वघोष ने जिस परम्परा का उल्लेख किया है उसके अनुसार आलार एक सांख्य विचारक थे। परन्तु सभी बौद्ध ग्रन्थ एकमत होकर यह कहते हैं कि उनके द्वारा सिद्ध ध्यानयोग की पहुँच केवल नैवसंज्ञा न-असंज्ञा आयतन तक ही थी **'नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसमापत्तेर्मार्गः'** (ललितविस्तर पृ० १८०)। सिद्धार्थ मुनि ने संज्ञावेदयितनिरोधसमापत्ति स्वयं अधिगत की थी। निर्वाण-भूमि इसके पश्चात् प्राप्त होती है। **'दुःखमेव सर्वं विवेकिनः'** (योगसूत्र २–१५) का यह कथन बौद्धधर्म के किसी भी ग्रन्थ में सर्वथा समीचीन होगा। शास्ता ने प्रथम आर्यसत्य द्वारा इसी तथ्य का उपदेश किया था। योगसूत्र में दी गई अविद्या की परिभाषा भी सौगत सिद्धान्तानुकूल है। अनित्य, अनात्म एवं दुःख इन लक्षणों को न पहचानना अविद्या है, इसमें इनका प्रतिकूल ढूढ़ना विपर्यास है।

करुणा, मैत्री, मुदिता और उपेक्षा इन चार ब्रह्मविहारों की सूची योगसूत्र, पालि एवं संस्कृत सूत्रों के अतिरिक्त एक मध्यकालीन पाशुपत अभिलेख मे भी उल्लिखित है। गीता और उपनिषदों में यह अज्ञात हैं। परन्तु बौद्ध क्षेत्र में बुद्ध के युग से ही इनका प्रचलन व वर्णन होता आया है।

श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञा (योगसूत्र १–२०) की गणना बोधिपाक्षिक धर्मों में, पाँच 'इन्द्रियों' व पाँच 'बलों' के अन्तर्गत बौद्ध ग्रन्थों में सैकड़ों बार हुई है। स्मृति के प्रकार और समाधियों की लम्बी सूची संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों की विशेषता है। उदाहरणार्थ कुछ सूचियाँ अर्थविनिश्चयसूत्र, धर्मसंग्रह, महाव्युत्पत्ति तथा श्री एडजर्टनकृत 'बौद्धसंस्कृतशब्दकोश' की सहायता से तैयार की जा सकती है।

'दुःखमेव सर्वं विवेकिनः' के ऊपर टीका करते समय योगभाष्य के लेखक ने योगशास्त्र के चतुर्व्यूह–संसार, संसारहेतु, मोक्ष, एवं मोक्षोपाय की तुलना चिकित्सा-

शास्त्र के चतुर्व्यूह–रोग, रोगहेतु, आरोग्य एवं भैषज्य के साथ की है। चतुर्व्यूह का हेय, हान, हानोपाय तथा अतिगन्तव्य के अन्तर्गत उल्लेख न्यायसूत्रभाष्य (१-१-१) के लेखक वात्स्यायन ने भी किया है। इस चतुर्व्यूह की तुलना बौद्ध चतुर्व्यूह अथवा सत्यचतुष्टय—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःख निरोधमार्ग के साथ अनेक विद्वानों ने की है। योगशास्त्र, बौद्ध तथा अबौद्ध, एक प्रकार का चिकित्साशास्त्र है। योगी ही चिकित्सक है। मार्ग भैषज्य है। अविद्या, तृष्णा, दुःख, मृत्यु आदि रोग हैं। भगवान बुद्ध को **'स वैद्यराजो अमृतभेषजप्रदः'** (ललितविस्तर पृ०३) में वैद्यराज कहा गया है। काश्यपपरिवर्त (पृ० १३९) में कहा गया है–**'आर्याष्टाङ्गो मार्गः दौष्प्रज्ञसर्वपरप्रवादिनां कुमार्गप्रतिपन्नानां चिकित्सा इयं उच्यते काश्यप, भूतचिकित्साः; तत्र काश्यप, बोधिसत्त्वेन योगः करणीयः।'** मध्य एशिया, चीन तथा जापान में बुद्ध की भैषज्यगुरु के रूप में स्तुति प्राचानकाल से सुविदित है। निर्वाण का एक नामान्तर आरोग्य भी है। अर्थविनिश्चयसूत्र में भो अष्टाङ्गमार्ग को **'महौषधं शान्तिकरं'** कहा गया है।

अष्टाङ्गमार्ग के आठ अङ्गों–सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक्समाधि—की पातञ्जलयोग के आठ अङ्गों—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के साथ बहुधा तुलना की जाती रही है। परन्तु 'आठ अङ्गों' को गिना देने के अतिरिक्त दोनों मार्गों का विस्तृत अध्ययन कदाचित् अभो नहीं किया गया है। यह यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इन दोनों अङ्ग-सूचियों के मध्य एक भेद यह है कि बौद्ध अङ्ग-सूची में बौद्ध दार्शनिक पक्ष भी सम्मिलित है : 'सम्यग्दृष्टि' जिसका स्थान सबसे पहले सुरक्षित है तथा 'सम्यक्संकल्प' भी इसी वैचारिक पक्ष को संकेतित करता है। पातञ्जल अङ्ग-सूची में इस प्रकार का कोई अङ्ग नहीं है। बौद्ध 'स्मृति' एवं 'समाधि' के परिष्कारों में ही प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान को सम्मिलित किया गया है।

बौद्ध योग के चार ध्यानों की तुलना पातञ्जल योग की चार समाधियों के साथ अनेक विद्वानों ने की है। सेनार्त एवं पूसें द्वारा फ्रेञ्चभाषा में इस विषय पर उल्लेखनीय कार्य हैं। समाधि एवं समापत्ति समानार्थक शब्द हैं। इसी प्रकार ध्यान और समाधि भी समानार्थक हैं। अर्थविनिश्चयसूत्र (पृष्ठ ३१६) में कहा है :— **"सम्यक्समाधिः कतमः? चत्वारि ध्यानानि। "सवितर्कं सविचारं विवेकजं प्रीतिसुखं, अध्यात्मप्रमोदनात्प्रीतिसुखं, उपेक्षास्मृतिसम्प्रजन्यसुखं, तथा उपेक्षास्मृतिपरिशुद्धिरदुःखासुखा वेदना"** (धर्मसंग्रह ७२)। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ध्यान की चरमावस्था समाधि है, जिस अवस्था में ध्याता, ध्येय एवं ध्यान का भेद समाप्त हो

जाता है। इसकी सिद्धि ईश्वरप्रणिधान के विना भी होती है। पतञ्जलि ने चार समाधियों के लिये नामों की दो मालायें प्रयुक्त की हैं। प्रथम में 'सवितर्क', 'निर्वितर्क', 'सविचार', तथा 'निर्विचार' तथा द्वितीय में 'वितर्क', 'विचार', 'आनन्द' व 'अस्मिता' हैं। यह सम्प्रज्ञात समाधि अथवा समापत्ति की विभिन्न भूमियाँ अथवा अवस्थाएँ हैं। पातञ्जल योग और बौद्धयोग के बाहर भी चार ध्यानों की परम्परा सुविदित है। उदाहरणार्थ जैन सूत्रों में अट्ट (आर्त), रोद्द (रौद्र), धम्म (धर्म) एवं सुक्क (शुक्ल) यह चार प्रकार के ध्यानों की विस्तृत चर्चा है।[1] इनमें से धम्म झाण की चार अवस्थाएँ भी जैन ग्रन्थों में सुविदित हैं। महाभारत (शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, अध्याय १९५, श्लोक १) में **"ध्यानयोगं चतुर्विधम्"** कहा गया है। परन्तु चतुर्विध ध्यान का विस्तार वहाँ पर नहीं मिलता है। मात्र 'विचार' 'विवेक' एवं 'वितर्क' का प्रथम ध्यान के साथ सम्बन्ध बताया गया है। (तत्रैव श्लोक १५)।

ऐसा समझना कि ध्यान अथवा समाधि की केवल चार अवस्थाएँ या प्रकार होते हैं, त्रुटिपूर्ण होगा। बौद्धग्रन्थों में कई प्रकार से ध्यानों व समाधियों का वर्गीकरण तथा नामकरण किया गया है। उदाहरण के लिये कुछ का यहाँ उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा। बौद्ध ग्रन्थों में नौ प्रकार की अनुपूर्व समापत्तियों की सूची में उपर्युक्त चार ध्यानों के अतिरिक्त चार आरूप्य समापत्तियों—आकाशानन्त्यायतन-समापत्ति, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्चन्यायतन, न संज्ञा-न-असंज्ञायतन तथा संज्ञा-वेदयितनिरोध की भी गणना की जाती है। महाव्युत्पत्ति (१४९१) में यह संख्या बढ़ाकर ग्यारह समापत्तियों की तालिका दी गई है। पालि ग्रन्थों में 'चेतोसमाधि', 'धम्मसमाधि', 'उपचारसमाधि', 'अप्पनासमाधि', 'खणिकसमाधि', 'सम्मासमाधि' आदि के उल्लेख सुविदित हैं। विसुद्धिमार्ग में विमोक्षत्रय को सुञ्ञतसमाधि, अप्पणिहित तथा अनिमित्त कहा गया है। एक पालिजातक में कहा गया है कि सम्यक्सम्बुद्ध ने 'अनेककोटिसतसहस्स' समापत्तियों को प्राप्त किया था। ललितविस्तर (पृ० १८०) में **"लौकिकसमाधीनां"** तथा **"संस्कृतसमाधीनां"** का अलग अलग उल्लेख तथा पुनः **"ध्यानसमाधिसमापत्तीनां"** का एक साथ उल्लेख हुआ है। यह विदित है कि समापत्ति का अर्थ 'प्राप्ति' है। उदाहरणार्थ लङ्कावतारसूत्र (पृ० ४२) में **"समाधि-समापत्त्याधिष्ठानेन"** वाक्यांश से यह स्पष्ट है। परन्तु चार समाधियों अथवा ध्यानों के अतिरिक्त चार अथवा पाँच समापत्तियों का उल्लेख यह संकेतित करता है कि

---

१. द्रष्टव्य—वाल्टर शूब्रिंग, दि 'डाक्ट्रिन आफ दि जैनास्', दिल्ली, १९६२, पृ० ३१३-३१५, संस्कृत साक्ष्यों के लिये हेमचन्द्रकृत 'योगशास्त्र' उल्लेख्य है।

समाधि का अर्थ समापत्ति के अर्थ से भिन्न है और यह अर्थ मात्र 'प्राप्ति' नहीं कुछ और भी है।[१] इस विषय पर बौद्ध ध्यानियों व योगियों द्वारा प्रकाश अपेक्षित है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि चार समापत्तियों की गणना आठ प्रकार के विमोक्ष की सूची में अन्तिम चार प्रकार के विमोक्ष के अन्तर्गत भी की गई है (धर्मसंग्रह ५९)।

हमारा विश्वास है कि ध्यान, समाधि एवं समापत्ति बहुधा सूत्रों व शास्त्रों में समानार्थक शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं; तथापि उनके व्यक्तिगत प्रसङ्गभेद के कारण अर्थभेद भी सम्भव है।

चतुर्विध ध्यान के सम्बन्ध में महायान सूत्रों में सुविदित एक अन्य प्रकार के वर्गीकरण का वर्णन लङ्कावतारसूत्र (२-१५९, पृ० ४०-४१) में हुआ है। "**पुनरपरं महामते, चतुर्विधं ध्यानम्। कतमच्चतुर्विधम्? यदुत बालोपचारिकं ध्यानम्, अर्थप्रविचयध्यानम्, तथतालम्बनं ध्यानम्, ताथागतं चतुर्थं ध्यानम्।**" श्रावकों व प्रत्येकबुद्धों के योग के योगियों द्वारा किया जाने वाला ध्यान 'बालोपचारिक' कहा गया है। अर्थप्रविचय से तात्पर्य पुद्गलनैरात्म्य एवं धर्मनैरात्म्य की दृष्टि से किया जाने वाला ध्यान है। तथतालम्बन ध्यान वह ध्यान है, जिसमें द्विविध नैरात्म्य को यथाभूततथता की दृष्टि से मात्र परिकल्पित समझकर तथता का ध्यान होता है। चतुर्थ ध्यान की परिभाषा में कहा गया है: "**यदुत ताथागतभूम्याकारप्रवेशं प्रत्यात्मार्यज्ञानलक्षणत्रयसुखविहाराचिन्त्यसत्त्वकृत्यकरणतया ताथागतं ध्यानम् इति।**" इस दृष्टि से ध्यान का चरम लक्ष्य पुरुष की कैवल्यावस्था न होकर असंख्य प्राणियों की बोधि के लिये कार्य करना है। शाक्यमुनि ने तथागतभूमि अधिगत करके यही आदर्श सौगतों के समक्ष रखा था।

गुह्यसमाजतन्त्र (१८-१४३) में चार के स्थान पर निम्नलिखित पाँच प्रकार के ध्यानों की सूची दी गई है—

वितर्कं च विचारं च प्रीतिश्चैव सुखं तथा।
चित्तस्यैकाग्रता चैव पञ्चैते ध्यानसंग्रहाः॥

यहाँ पर यह उल्लेख्य है कि योग के अङ्गों की दो परम्पराएं प्राचीन काल में प्रचलित थीं। एक षडङ्गयोग की और दूसरी अष्टाङ्गयोग की। मैत्रायणी-उपनिषद्,

---

१. देखिए फ्रेंकलिन एडजर्टन, 'बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत डिक्शनरी' दिल्ली १९७०, पृ० ५६९-७०, टी० डब्ल्यू० रीज डेविड्स एवं विलियम स्टेड, 'पालि-इंगलिश डिक्शनरी' लन्दन, १९६६, पृ० ६८५-८६।

ध्यानविन्दूपनिषद्, तथा योगचूडामणि-उपनिषद् योग के केवल छः अङ्गों का वर्णन करते हैं। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि ये पाँच अङ्ग इन तीनों सूचियों में समान रूप से विद्यमान हैं। छठा अङ्ग मैत्रायणी उप० में तर्क है, परन्तु अन्य दो उपनिषदों में आसन है। षडङ्गयोग का उल्लेख एक बौद्ध ग्रन्थ भी करता है। श्री गुह्यसमाजतन्त्र (१८-१४०) में कहा गया है —

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥

इस सूची में पाँच वही अङ्ग हैं जो उक्त सूचियों में हैं, परन्तु अनुस्मृति इस सूची की विशेषता है। इस ग्रन्थ में षडङ्गयोग को तन्त्र के चार उपायों में से एक उपाय के अन्तर्गत माना गया है। यह स्मरणीय है कि तान्त्रिक योग में यम-नियमों का वह स्थान नहीं है, जो पातञ्जल योग व जैन-बौद्ध योगों में महाव्रतों, अणुव्रतों, पञ्चशीलों तथा दशशीलों का है। पूर्वमध्यकालीन एक अभिलेख[1] भावतेज नामक पाशुपत योगी की प्रशंसा करता है, जो पातञ्जल योग के सभी अङ्गों का अभ्यास करता था। परन्तु अभिलेख में केवल नियम, प्राणायाम, समाधि, ध्यान तथा आसन इन्हीं पाँच अङ्गों का उल्लेख है।

अहिर्बुध्न्यसंहिता (३१-१७) में अष्टाङ्गों की उसी क्रम में गणना की गई है, जिस क्रम में योगसूत्र में उनका उल्लेख है। अष्टाङ्गयोग का तथा उपनिषदिक षडङ्ग-योग का उद्देश्य आत्मा और परमात्मा का संयोग अथवा सायुज्य है। परन्तु गुह्य-समाजतन्त्र (१८-३२) में 'बोधिचित्त' अथवा 'प्रज्ञोपाय' का योग लक्ष्य है। "**प्रज्ञो-पायसमापत्तिर्योग इत्यभिधीयते।**" तन्त्रों के प्रकाशन के पूर्व बौद्ध योग का लक्ष्य समाधि प्राप्त करना था। 'समाधि' न केवल ध्यान और योग का, अपितु निर्वाण का भी नामान्तर है। 'प्रज्ञोपाय' अथवा प्रज्ञा और उपाय समाधि के ही दो स्वरूप हैं।[2] समाधि को 'वज्रसत्त्व' भी कहा गया है। अद्वयवज्राचार्य ने कहा है-'वज्रेण शून्यता प्रोक्ता, सत्त्वेन ज्ञानमात्रता।' (अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० २४)। शून्यता अथवा चित्त-मात्रता समाधि के अधिवचन हैं। जिस प्रकार समथ और विपस्सना युगनद्ध कहे गये हैं, उसी प्रकार प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा भी युगनद्ध हैं, एक सिक्के के दो पहलू मात्र हैं। इस अद्वैत तत्त्व को प्रज्ञापारमिता, तथता, धर्मकाय, धर्मधातु,

---

१. द्र०—विश्वम्भरशरणपाठक, 'शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया' वाराणसी १९६०, पृ० १५। सम्बन्धित अभिलेख 'इण्डियन एन्टीक्वरी' के अट्ठारहवें अङ्क में प्रकाशित है।

२. द्र०—लालमणि जोशी-'स्टडीज इन दि बुद्धिस्ट कल्चर आफ इण्डिया' दिल्ली १९६७,

परमार्थ, निर्वाण, उपशम, और शान्ति कहा गया है। यही बौद्ध योग और साधना का परमार्थ ध्येय है। इसे समाधि भी कहा गया है। यही ध्यानपारमिता है। दशभूमिकसूत्र (पृ० ३७) में ध्यानपारमिता को 'सर्वज्ञज्ञानाभिमुखता' कहा गया है। समाधिराजसूत्र (पृ० ७९) के समाधिनिर्देशपरिवर्त में समाधि का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

"कतमः समाधिनिर्देशः ? या यथावत्तता सर्वधर्माणां समता अविषमता। अकल्पना अविकल्पना। अविठपना असमुत्थापना। अनुत्पादः अनिरोधः। कल्पविकल्पपरिकल्पसमुच्छेदः। चित्तानालम्बता। अमनसिकारः। प्रज्ञप्तिसमुच्छेदः। वितर्कविकल्पसमुच्छेदः। रागद्वेषमोहसमुच्छेदः। नान्तानन्तमनसिकारः। मनसिकारसमुच्छेदः। स्कन्धधात्वायतनस्वभावज्ञानम्। स्मृतिमतिगतिह्रीधृतिचारित्राचारगोचरप्रतिपत्तिस्थानम्। अरणाभूमिः। शान्तभूमिः। सर्वप्रपञ्चसमुच्छेदः। सर्वबोधिसत्त्वशिक्षा। सर्वतथागतगोचरः। सर्वगुणपरिनिष्पत्तिः। अयमुच्यते कुमार, समाधिनिर्देशः। यत्र समाधिनिर्देशे प्रतिष्ठितो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽविरहितो भवति समाधिना, अभ्रान्तचित्तश्च भवति, महाकरुणासमन्वागतोऽप्रमेयाणां च सत्त्वानामर्थं करोति।" इस समाधि को लङ्कावतारसूत्र में 'तथागतध्यान' कहा गया है। षडङ्गयोग और अष्टाङ्गयोग की चर्चा के साथ अचानक समाधि के इस परिनिष्पन्न स्वरूप का वर्णन करने का हमारा मन्तव्य यह बताना था कि 'योग' के अङ्गों के केवल ये दो ही संग्रह नहीं हैं और समाधि केवल योग का एक अङ्गमात्र नहीं है। मैत्रायणी-उपनिषद व गुह्यसमाजतन्त्र में उल्लिखित षडङ्गयोग के अतिरिक्त दो अन्य षडङ्ग मार्ग भी बौद्ध साहित्य में विदित हैं। एक षडङ्गयोग षट् पारमिताओं—दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एवं प्रज्ञा का है, जो बोधिसत्त्वयान अथवा बुद्धयान अथवा एकयान कहा गया है। पालि अङ्गुत्तरनिकाय (खण्ड ३ पृ० १४८–१४९) में एक स्थल पर एक अन्य षडङ्गयोग अथवा षडङ्गमार्ग का वर्णन हुआ है। कहा है—

"छहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो तपुस्सो गहपति तथागते निट्ठङ्गते अमतद्दसो अमतं सच्छिकत्वा इरियति। कतमेहि छहि ? बुद्धे अवेच्चप्पसादेन, धम्मे अवेच्चप्पसादेन, संघे अवेच्चप्पसादेन, अरियेन सीलेन, अरियेन ञाणेन, अरियाय विमुत्तिया।" न केवल तपुस्स गृहपति ने वरन् बीस अन्य गृहपतियों ने भी इसी षडङ्गमार्ग द्वारा निर्वाण अथवा अमृत प्राप्त किया था। इन गृहस्थ अर्हतों की सूची स्थानाभाव के कारण यहाँ पर नहीं दुहराई जा रही है। इस मार्ग में त्रिमुखी श्रद्धा, शील, ज्ञान तथा विमुक्ति ये छः अङ्ग मोक्ष के लिये पर्याप्त माने गए हैं। यहाँ पर परम्परागत अष्टाङ्ग मार्ग से भेद ध्यातव्य है, विशेषरूपेण ध्यान और समाधि की अनुपस्थिति।

स्थानाभाव के कारण दश पारमियों या पारमिताओं की तथा तेरह घुतङ्गों की चर्चा से वियोग करना पड़ रहा है।[1]

निबन्ध में उल्लिखित पालि एवं संस्कृत ग्रन्थों की सूची—

अङ्गुत्तरनिकाय पालि (नालन्दा नागरी संस्करण)।
संयुत्तनिकाय पालि (नालन्दा नागरी संस्करण)।
दीघनिकाय पालि (नालन्दा नागरी संस्करण)।
मज्झिमनिकाय पालि (नालन्दा नागरी संस्करण)।
धम्मपद पालि (नालन्दा नागरी संस्करण)।
विमुत्तिमग्ग (अंग्रेजी अनुवाद, कोलम्बो)।
विसुद्धिमग्ग पालि (हार्वर्ड आरियन्टल सिरीज)
उदान पालि (नालन्दा ना० सं०)
जातक पालि (रोमन संस्करण, लन्दन)
ऋग्वेद संहिता (पूना संस्करण)
महाभारत (गीताप्रेस संस्करण)
भगवद्गीता (गीताप्रेस संस्करण)
योगसूत्र (गीताप्रेस संस्करण)
बृहदारण्यक उपनिषद् (गीताप्रेस संस्करण)
छान्दोग्य उपनिषद् (गीताप्रेस संस्करण)
तैत्तरीय उपनिगद् (गीताप्रेस संस्करण)
कठ उपनिषद् (गीताप्रेस संस्करण)
मुण्डक उपनिषद् (गीताप्रेस संस्करण)
श्वेताश्वतर उपनिषद् (गीताप्रेस संस्करण)
मैत्रायणी उपनिषद् (रोमन संस्करण)
परमहंस उपनिषद् (बरेली संस्करण)
योगतत्त्वोपनिषद् (बरेली संस्करण)
योगचूडामणि उपनिषद् (बरेली संस्करण)
ध्यानबिन्दूपनिषद् (बरेली संस्करण)
नादबिन्दूपनिषद् (बरेली संस्करण)

---

१. धूतगुणों की सूची व चर्चा के लिये देखिए—'मिलिन्द पञ्हो' बम्बई, १९४० पृ० ३५१ विसुद्धिमग्ग (दूसरा अध्याय)।

अहिर्बुध्न्य संहिता (अड्यार–मद्रास)
वैखानसस्मार्तसूत्र (कलकत्ता संस्करण)
स्वयम्भूपुराण (कलकत्ता संस्करण)
महाव्युत्पत्ति (रोमन संस्करण, टोकियो)
तत्त्वसंग्रह (वाराणसी संस्करण)
न्यायबिन्दुटीका–धर्मोत्तर (वाराणसी संस्करण)
मध्यमकावतार (मद्रास)
तर्कभाषा (बड़ौदा संस्करण)
अद्वयवज्रसंग्रह (बड़ौदा संस्करण)
काश्यपपरिवर्त (शांघाई से प्रकाशित रोमन संस्करण)
अर्थविनिश्चयसूत्र (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
धर्मसंग्रह (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
वज्रच्छेदिका (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
समाधिराजसूत्र (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
लङ्कावतारसूत्र (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
ललितविस्तर (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
गुह्यसमाजतन्त्र (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
बोधिचर्यावतारपञ्जिका (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)
दशभूमिकसूत्र (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा)

● ● ●